© 2020 IJSRST | Volume 7 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology
DOI : 10.32628/IJSRST

राष्ट्रीय आंदोलन और वामपंथी

बिन्दु भूषण सिंह
शोध छात्र, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भारत के स्वाधीनता संग्राम की राजनीति विश्व के विभिन्न भागों में होने वाली घटनाओं के प्रभाव से अछूती नहीं रही। लेनिन के नेतृत्व में रूस में होने वाली महान् क्रांति का हमारे स्वाधीनता आन्दोलन की गति पर क्रांतिकारी प्रभाव पड़ा। यद्यपि 1905 में लेनिन का प्रथम प्रयास असफल रहा, पर 1917 के दूसरे प्रयास ने रूसी जनता के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात किया। रूस की इस महान् 'अक्टूबर समाजवादी क्रान्ति' ने विश्व भर के श्रमिक वर्गों के संघर्ष को केवल नया उत्साह ही नहीं दिया, वरन् विश्व के गरीब व पिछड़े देशों में चल रहे स्वाधीनता आन्दोलनों को नया जीवन भी दिया। इसलिए भारत, जो उस समय ब्रिटिश औपनिवेशिक शक्ति के जुये के नीचे पिस रहा था, उसका राष्ट्रीय आन्दोलन भी इस शताब्दी की इस स्मरणीय घटना से प्रभावित हुआ। दुर्भाग्यवश, हमारे स्वाधीनता संघर्ष के लेखकों व टीकाकारों ने इतिहास के इस पक्ष के साथ उचित न्याय नहीं किया है जबकि यह असंदिग्य तथ्य है कि 1917 के बाद हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का ''आधार विस्तृत हो गया व उसका मंच नई ऊँचाईयों को छूने लगा।''[1]

1905 की असफल रूसी क्रान्ति : भारत में उग्रवादी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन

1905 में हुई प्रथम रूसी क्रान्ति से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन प्रभावित हुआ। भारत के सभी वर्गों– नरमपंथियों, उग्रपंथियों व विशेषकर आतंकवादियों– ने इसका स्वागत किया। दक्षिणी अफ्रीका में रहते हुए गाँधीजी ने इसे वर्तमान शदी की महानतम घटना तथा एक महान सबक बताया। जार द्वारा ड्यूमा (संसद) बुलाए जाने को भारतीय उदारवादियों ने रूस में कुलीनतंत्र व अधिनायकवाद की पराजय के रूप में देखा। दादाभाई नौरोजी, जिन्होंने ब्रिटिश उपनिवेशवादी व्यवस्था को देश बर्बाद करने के लिए लक्षित करने में नाम कमाया था, ने 1906 की कलकत्ता कांग्रेस में कहा कि ''जबकि पूर्व में चीन और पश्चिमी एशिया में पर्शिया जाग रहे हैं, जापान जाग चुका है, व रूस मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहा है– और ये सभी निरंकुशवादी है– क्या ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य के स्वतंत्र नागरिक सदैव अधिनायकवाद के अधीन रह सकते हैं जो कभी विश्व के लोगों को सभ्य बनाने में सबसे आगे थे।''[2]

इस असफल रूसी क्रान्ति का हमारे देश में उग्रवाद के अभ्युदय पर निश्चित प्रभाव पड़ा जिसका परिणाम देश में व्याप्त विनाशवाद (Nihilism) और आतंकवाद था। तिलक के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रवादियों के उग्रपंथी वर्ग ने रूसी तरीकों की प्रशंसा की। युवा क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश राज समाप्त करने के लिए बमों व अन्य हिंसक उपायों को प्राथमिकता दी। तिलक ने गुप्त रूप से लेनिन से पत्र–व्यवहार किया, जबकि युवा नेता गुप्त तरीकों से रूस पहुँचे जिससे वे बम तथा अन्य विस्फोटक पदार्थ बनाना सीख सकें। खुदी राम बोस द्वारा बम फैंकना रूसी तरीकों के प्रभाव का ज्वलन्त उदाहरण था। केवल यही नहीं, भारतीय क्रान्तिकारी नेताओं ने स्वराज्य पाने के लिए के लिए किसी भी साधन के प्रयोग को न्यायोचित बताया। इसी हेतु तिलक ने अपने पत्र केसरी में एक उत्तेजक लेख लिखा। ब्रिटिश शासन द्वारा इस लेख को 'अपमानजनक' व 'उत्तेजनात्मक' माना गया। अतः उन्हें गिरफ्तार करके मांडले जेल भेज दिया गया। इसका बम्बई के लोगों ने उग्र विरोध किया व इसी हेतु प्रदर्शन किए। रूस में लेनिन ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए अपने ''विश्व राजनीति में उत्तेजनात्मक सामग्री'' नामक शीर्षक वाले लेख में लिखा कि ''उदार ब्रिटिश बुर्जुआ वर्ग अपने घर में विकसित श्रमिक आन्दोलन से क्षुब्ध और भारत में क्रान्तिकारी संघर्ष के विकास से भयभीत होकर अत्यंत शीघ्र तथा साफ किन्तु शांत ढंग से यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि किस तरह बहुत ही 'सभ्य' यूरोपियन राजनीतिज्ञ जो संविधानवाद के उच्च सिद्धान्त के माध्यम से गुजरे हैं, अत्यंत क्रूर बन सकते हैं, जब जन–सामान्य उस पूँजीवादी उपनिवेशी व्यवस्था के खिलाफ उठ खड़े होते हैं जो गुलामी, लूट तथा डकैती की व्यवस्था है।''[3]

ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियाँ रूसी विरोध पद्धति की सराहना को हतोत्साहित नहीं कर सकी। तिलक, लाजपत राय, अजीतसिंह सरहदी व बी.सी. पाल जैसे विशिष्ट राष्ट्रीय नेताओं की नजरबन्दी व निष्कासन उग्र देशभक्ति की प्रवृत्तियों को नियंत्रित नहीं कर सकीं। ''अभिनव भारत'' के सदस्य लाला हरदयाल ने इंग्लैंड में भारतीय क्रान्तिकारियों में शामिल होकर रूसी विनाशवादियों से सम्पर्क स्थापित किया। सेनापति पांडुरंग वापट को बम बनाने की कला सीखने के लिए रूस भेजा गया। कलकत्ता के क्रान्तिकारी संगठन के सदस्य हेमचन्द्र कानूनगो विद्रोही गतिविधियों की जानकारी के लिए इंग्लैंड गये। उन्होंने पैरिस में अन्य देशभक्तों जैसे एस.आर.राना, बी.आर. कामा, श्यामजी कृष्णा वर्मा आदि से सम्पर्क किया।

रूसी प्रभाव से निपटने के लिए ब्रिटिश शासकों ने अपनी दमन की नीतियाँ उग्र कर दीं। 1907 में राजद्रोही सभा निषेध अधिनियम पारित कर सार्वजनिक सभा करने पर पाबन्दी लगा दी गयी। 1908 के विस्फोटक सामग्री अधिनियम द्वारा बम बनाने की सामग्री रखने पर भारी जुर्माने की व्यवस्था की गयी। उसी वर्ष एक अन्य कानून ने अखबारों के प्रकाशन को मैजिस्ट्रेट की दया पर छोड़ दिया। फौजदारी कानून अधिनियम ने कार्यपालिका को व्यक्तियों व संगठनों पर नियंत्रण लगाने के बारे में असीमित अधिकार दे दिये। वन्देमातरम्, युगान्तर, संध्या व केसरी जैसे अखबारों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। यह सब स्वेच्छाचारी ब्रिटिश राज ने इस आशंका से किया कि रूस में चल रहे स्वाधीनता संग्राम के विकास को भारत में बहुत जिज्ञासा से देखा जा रहा था।''[4] यहाँ यह कहना उल्लेखनीय होगा कि जबकि भारतीय क्रान्तिकारी तत्वों ने रूसी समकक्षों से प्रेरणा ली, पर वे उनके अन्धे समर्थक नहीं रहे। ''जबकि रूसी लोग मानव द्वारा मानव का किसी भी प्रकार का शोषण समाप्त करने की लड़ाई लड़ रहे थे, भारतीय अपनी शक्ति एक ऐसे विदेशी शासकों के विरुद्ध लगा रहे थे जिनके भिन्न विश्वास थे व जिनकी भिन्न सभ्यता थी।[5]

1917 की सफल रूसी क्रान्ति : भारत में क्रान्तिकारी वामपंथ को प्रोत्साहन

तथापि 7 नवम्बर 1917 को रूस में लेनिन के नेतृत्व में होने वाली सफल क्रान्ति, जिसने विश्व में पहली समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की, ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर दूरगामी प्रभाव डाला। अधिकांश देशी प्रबुद्ध लोगों के लिए अक्टूबर क्रान्ति अपने सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयवाद, सारे आश्रित जनों की मुक्ति, प्रजातीय समानता और सभी राष्ट्रीयताओं को आत्म–निर्णय के नारे सहित निरंकुशता, दमन ओर शोषण के ऊपर स्वतंत्रता की विजय पताका की तरह दिखाई दी।[6] जब लेनिन ने यह घोषणा की कि पूर्व के लोगों का क्रान्तिकारी आन्दोलन एक अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद के खिलाफ सोवियत गणतंत्र के क्रांतिकारी संघर्ष के साथ प्रभावी रूप में विकसित हो सकता है तो एशिया के सारे राष्ट्रों के लिए यह एक विस्फोटक वक्तव्य लगा, क्योंकि वे अपनी स्वाधीनता के लिए लड़ रहे थे। इस वक्तव्य में उन्हें एक नई आशा दिखाई दी।[7]

लेनिन के नेतृत्व में रूस में समाजवाद की विजय को ब्रिटिश शासकों ने बहुत आशंका से देखा। तत्कालीन भारत मंत्री के बारे में कहा जाता है कि वह ''रूस में क्रान्ति से भरे विचारों को लेकर सोया। उन्होंने इसे ऐसी घटना के रूप में देखा जिस पर पहले बहुत चर्चा हुई थी और जिसके बारे में पहले से संकेत भी हुआ था, पर जब यह घटना हुई तो विश्व आश्चर्यचकित हो गया।''[8] भारतीय वायसराय लार्ड चैम्सफोर्ड के लिए यह सब एक गंभीर धक्के के रूप में लगा। भारत सरकार जो अभी तक स्वराज्य की अभूतपूर्व माँग के राजनीतिक आन्दोलन का सामना कर रही थी, अब इस देश में एक नई खतरनाक स्थिति उसके सामने आई। शायद पहली बार इस स्थिति ने ब्रिटिश शासकों को भारत के प्रति अपनी औपनिवेशिक नीति की स्पष्ट व्याख्या करने पर विवश किया। ब्रिटेन के दृष्टिकोण में यह खतरा बोल्शेविक शस्त्रों की विजय से नहीं वरन बोल्शेविक विचारधारा व आचरण के घातक प्रभाव से आया क्योंकि उन्हें लगा कि नई रूसी सत्ता यूरोप के लोगों, व विशेषकर भारत के लोगों, को प्रभावित करने की चेष्टा करेगी। इन्हीं परिस्थितियों में ब्रिटिश शासकों ने रूसी क्रान्ति के प्रभाव से उत्पन्न खतरनाक स्थितियों पर विशेष ध्यान दिया तथा उन्होंने अपनी नीति लागू करने हेतु निम्न उपाय किए:

1. भारत पर अपना नियंत्रण बनाए रखने के लिए ब्रिटिश सरकार ने बोल्शेविक–विरोधी सघन प्रचार प्रारम्भ कर दिया। इस देश के लोगों को समझाया गया कि लेनिन का बोल्शेविज्म केवल अराजकता, अव्यवस्था व आक्रमण के अलावा कुछ नहीं है। एडमंड कैन्डलर जैसे एक प्रमुख लेखक ने एक रचना प्रस्तुत की जिसमें उसने बोल्शेविज्म के सिद्धान्त के विरोध में जनता की धार्मिक भावनाओं को उकसाने की चेष्टा कीं।[9]

2. अंग्रेज शासकों ने अपनी दमन की नीति और तीव्र कर दी। 6 दिसम्बर 1919 की एक विज्ञप्ति के अनुसार भारत सरकार ने रूबल मुद्रा रखने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 1921 में बोल्शेविक गतिविधियों से निपटने के लिए एक विशेष संगठन स्थापित किया गया। सभी प्रगतिवादी नेताओं को जेल से ठूँसने की गलती करने से बचने की जगह ब्रिटिश सरकार ने यह आवश्यक समझा कि देश में गड़बड़ की सभी संभावनाओं जैसे खिलाफत आन्दोलन, कृषक आन्दोलन, श्रम आन्दोलन आदि पर कड़ा प्रतिबंध रखा जाए क्योंकि इन्हीं में से बोल्शेविक क्रान्ति को प्रभावी बल मिल सकता था।

3. भारत सरकार ने भारतीय रियासतों के राजाओं को विश्वास में लेकर बोल्शेविक प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए उनसे सहायता माँगी।

सरकार के उपरोक्त उपाय अपने लक्ष्य की सिद्धि में असफल हुए। तिलक व उनके अनुयायियों ने बोल्शेविकों की उपलब्धियों की खुल कर प्रशंसा की। महाराष्ट्र के एस.ए. डांगे व बंगाल के मुजफ्फर अहमद जैसे कई युवा वामपंथी लोग विशुद्ध रूप से राष्ट्रीय

आधार पर क्रान्ति से आकर्षित हुए। लेनिन की विजय ने उन्हें बहुत प्रभावित किया क्योंकि लेनिन ने जार की स्वेच्छाचारी व्यवस्था पर प्रभावी ढंग से प्रहार किया था।

अतः हमारे देश के स्वाधीनता आन्दोलन पर रूसी क्रान्ति के प्रभाव का वास्तविक महत्व एक नए सामाजिक व आर्थिक कलेवर व दृष्टिकोण में देखना चाहिए। बोल्शेविक विचार देश के कई राष्ट्रवादी नेताओं के विचारों को परिवर्तित करने में सफल रहे जो बाद में साम्यवादी दल के संस्थापक बने, यहाँ तक कि महात्मा गाँधी भी रूस में समाजवाद की विजय से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। यद्यपि रूस की अक्टूबर क्रान्ति ने हिंसा का औचित्य सिद्ध किया, परन्तु गांधीजी ने अपने अहिंसा के सिद्धान्तों से उसका तालमेल नहीं किया तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के आधार को विस्तृत करके उसे एक जन संघर्ष के रूप में परिणित कर दिया। इसके लिए लेनिन ने भी गांधीजी को ''एक जन आन्दोलन के प्रेरक व नायक'' के रूप में सराहा।[10]

लेनिन और तृतीय कामिनटर्न : अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद के नियंत्रण के अधीन भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का विकास

लेनिन की साम्राज्यवाद संबंधी विचारधारा की मुख्य विशेषता इस तथ्य में खोजी जानी चाहिए कि उन्होंने मार्क्सवादी विचारों के अनुसार पूँजीवाद की नयी एकाधिकारी स्थिति व उपनिवेशों में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलनों की विशेष स्थिति का वर्गीकरण किया। इस कारण उनके विश्लेषण से उपनिवेशों की जनता साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने वाली सामाजिक शक्तियों को समझ सकी। अपने संघर्ष को विस्तृत क्रान्तिकारी प्रक्रिया से जोड़ सकने में उन्हें सहायता मिली। लेनिन ने अपने लक्ष्य के प्रति औपनिवेशिक जनता में आत्म–विश्वास पैदा किया। अस्तुः अपने लेखन द्वारा लेनिन ने औपनिवेशिक व अर्द्ध–औपनिवेशिक जनता को क्रान्ति के सिद्धांतों की मुख्य रूपरेखा समझायी।[11]

इस सन्दर्भ में मार्क्सवाद की व्याख्या करते हुए लेनिन ने यह स्पष्ट किया कि प्रत्येक सामाजिक प्रश्न निश्चित ऐतिहासिक संदर्भ में ही परखा जाना चाहिए और यदि एक विशेष देश से संबंधित है तो समान ऐतिहासिक युग के अधीन उस उस देश की विशिष्टताओं को उचित महत्व देना होगा जो उन्हें दूसरों से अलग करती है[12] जुलाई–अगस्त 1920 में तृतीय साम्यवादी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन में मनवेन्द्र नाथ राय ने जब विश्व के पिछड़े व गरीब देशों में चल रहे मुक्ति आन्दोलनों के सवाल पर अपने विचार रखे, तो वहाँ वैचारिक संघर्ष की नौबत आ गई। लेनिन इस बात पर बल देना चाहते थे कि औपनिवेशक देशों में चल रहे बुर्जुआ प्रजातांत्रिक स्वतंत्रता आन्दोलनों को कामिन्टर्न द्वारा समर्थन मिलना चाहिए यदि वे साम्राज्यवादी शक्तियों से मिलकर चलाए जाने वाले सुधार आन्दोलनों से भिन्न हों। भारत के मामले में इसका तात्पर्य यह था कि क्रान्तिकारी व्यक्तित्व वाले गांधीजी के नेतृत्व में चलाया जाने वाले स्वतंत्रता संग्राम को कामिन्टर्न का समर्थन मिलना चाहिए। पर एम.एन. राय का विभिन्न मत था। वे इटली के सरैटी की भांति देश के किसानों व श्रमिकों द्वारा एक पृथक् मुक्ति आन्दोलन संगठित करना चाहते थे। अतः उनका विचार था कि भारत में साम्यवादियों की स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए बुर्जुआ प्रजातांत्रिक क्रांति का समर्थन नहीं करना चाहिए। अन्ततोगत्वा लेनिन ने एक महान् नीतिज्ञ के रूप में, भारतीय साम्यवादियों को बुर्जुआ–प्रजातांत्रिक आन्दोलन में बिना शामिल हुए उसे समर्थन देने का सुझाव दिया, क्योंकि साम्यवादियों का वास्तविक उद्देश्य राष्ट्रीय स्वाधीनता के बाद सत्ता पर कब्जा करना था। अतः दोनों विचारधाराओं को मान्यता प्रदान की गई। अस्तु हमारे देश के स्वतंत्रता संग्राम में कामिन्टर्न की भूमिका के लिए प्रवेश मार्ग मिल गया जिसे लेनिन ने निम्न आधारों पर उचित ठहरायाः[13]

1. एशिया के बुर्जुआ वर्ग अभी भी युवा, उत्साही व उदीयमान है, अतः अपने हित के लिए वे सैनिक तरीके से प्रजातांत्रिक मांगों के लिए लड़ने में पूर्ण समर्थ हैं।

2. इन क्रान्तियों ने मौलिक कृषि सुधारों को प्रकाश में लाने का ऐतिहासिक कार्य किया है अर्थात् सामन्तवाद को सभी प्रकारों से व सभी आकारों में नष्ट करने की आवश्यकता है।

3. उन्होंने लाखों की संख्या में जनसामान्य को राजनीतिक गतिविधियों व संघर्षों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया है। विशेष तौर से, उन्होंने किसानों में आत्म–विश्वास और उपक्रम जागृत किया है जो इन आन्दोलनों के मुख्य सामाजिक आधार है।

4. ये आन्दोलन विश्व की जनता के मुख्य शत्रु–साम्राज्यवाद–के विरुद्ध हें।

इस समय तक, भारतीय साम्यवादियों का यह पक्का विचार बन गया था कि रूसी लोग ''विश्व क्रान्ति के लिए कार्य कर रहे हैं और उनकी अपनी क्रान्ति उसी का एक हिस्सा है।''[14] यद्यपि भारतीय संगठन का चरित्र मुख्यतः एक राष्ट्रीय क्रान्तिकारिता का था, उग्र वामपंथी आन्दोलन के इन युवकों ने कामिन्टर्न के नेताओं से 1920 के मध्य तक अच्छे सम्पर्क सूत्र बना लिए। राजा महेन्द्र प्रताप, मौलाना अब्दुल्ला सिन्धी, मुहम्मद अली, पेशावर के मुहम्मद शफीक, मुहम्मद अली जकरिया, बरकत उल्लाह अब्दुल रब, दलीप सिंह

गिल व तिरुमल आचार्य जैसे कुछ नेताओं ने तो बोल्शेविक क्रान्ति का प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए रूस में शरण ली। वे लोग जो भारत छोड़ चुके थे व खिलाफत के पुनर्स्थापन में भाग लेने के लिए तुर्की जा रहे थे, ताशकन्द के सैनिक स्कूल में भर्ती हो गए। इस स्कूल के बन्द हो जाने के बाद उन्होंने मास्कों के पूर्वी विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया। बाद में यही लोग एक साम्यवादी आन्दोलन गठित करने के लिए भारत वापस आए। उनके लिए लेनिन ने यह सुझाव दिया कि ''धर्म भारतीय जनता की रक्षा नहीं कर सकेगा। टॉलस्टाय व अन्य लोगों ने रूस में यही करना चाहा, परन्तु वे असफल हुए। भारत वापस जाकर वर्ग संघर्ष का उपदेश दो, तभी भारत की स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त होगा।''[15]

प्रतिद्वन्द्वी विचारधाराओं का प्रचलन : स्वाधीनता संघर्ष की राजनीति में गाँधीवाद बनाम साम्यवाद

रूसी क्रान्ति ने भारतीय राष्ट्रवाद को सामाजिक व आर्थिक सन्दर्भों पर विचार करने पर विवश कर दिया। इसलिए एक प्रतिद्वन्द्वी विचारधारा, या एक प्रतिद्वन्द्वी बौद्धिक आकर्षण, सामने आया जिसके प्रति प्रबुद्ध वर्ग, विशेषकर बौद्धिक अशान्ति के क्षेत्रों में, उन्मुख होने पर तत्पर था।[16] उन्होंने लेनिन के इस आदेश को सराहा कि समाजवादी लोग अपने अपने देशों में बुर्जुआ लोकतांत्रिक तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों एवं सभी क्रान्तिकारी संघर्षों को सर्वश्रेष्ठ समर्थन दें, उन्हें विद्रोह करने हेतु सहायता दें और यदि जरुरी हो तो अत्याचारी साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ क्रान्तिकारी सहर्ष करें।[17] कामिन्टर्न की दूसरी कांग्रेस के प्रस्ताव को लागू करने के उद्देश्य से कार्यकारिणी समिति ने पाँच सदस्यों का एक ब्यूरो स्थापित किया, जो सदा कार्यरत रहेगा तथा सर्वोच्च नीति–निर्माण इकाई बना रहेगा। इसने दो महत्वपूर्ण निर्णय लिये– पूर्व के लोगों का एक सम्मेलन किया जाए और ताशकन्द में एक सेन्ट्रल एशियाटिक ब्यूरो खोला जाए। अतः अक्टूबर 1920 में ताशकन्द में भारतीयों के प्रशिक्षण के लिए एक सैनिक स्कूल व भारतीय भवन की स्थापना की गयी। मनवेन्द्र नाथ रॉय व बाबली जान जिसके प्रभारी बनाए गए। यहीं इस वर्ष के अन्त में भारत के विस्थापित साम्यवादी दल की स्थापना हुई।

उपर्युक्त स्थितियों ने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों जैसे गांधीजी के प्रतिक्रियावादी नेतृत्व पर प्रहार एवं स्वाधीनता संग्राम के नेतृत्व पर कब्जा करने के प्रयास को जन्म दिया। उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश भर में 22 केन्द्र स्थापित किए गए जिनमें बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, लाहौर व कानपुर के नाम प्रमुख हैं। मद्रास के सिंहवरेलु चेठियार ने अपने को साम्यवादी घोषित किया व उन्होंने 1922 के गया कांग्रेस अधिवेशन को सम्बोधित भी किया। लाहौर में कामगार वर्ग के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ जिसमें शमसुद्दीन हसन व गुलाम हुसैन ने भारतीय श्रमिक वर्ग का एक राजनीतिक दल गठित करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। फिर भी इस समय की उल्लेखनीय बात यह है कि साम्यवादी जनसामान्य का समर्थन पाने के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को क्रान्तिकारी बनाने की जबरदस्त कोशिश करते रहे। रॉय ने भारत में साम्यवाद के प्रमुख महन्त के रूप में 1922 के गया कांग्रेस अधिवेशन में एक घोषणा–पत्र लिखकर भेजा कि ''यदि कांग्रेस क्रान्ति, का नेतृत्व करे जो भारत की नींव को हिला रही है, तो उसे मात्र प्रदर्शनों व क्षणिक उत्साह में विश्वास नहीं रखना चाहिए। उसे श्रम संघों की माँगों को अपनी माँग तथा किसान सभा के कार्यक्रमों को अपना कार्यक्रम मानना चाहिए।''[18]

रूसी क्रान्ति का सबसे विशिष्ट प्रभाव हमारे स्वाधीनता संग्राम के आधार को विस्तृत करने की दिशा में पड़ा जिससे उस संगठन में औद्योगिक व खेतिहर दोनों प्रकार के श्रमिक शामिल हुए। लाला लाजपत राय, दीवान चमन लाल व वी.वी. गिरि जेसे बड़े राष्ट्रवादी नेता श्रमिक संगठनों को स्वाधीनता आन्दोलन की दूसरी पंक्ति मानते थे। साम्यवादियों की इस विचारधारा के उत्साही समर्थक राय के अनुसार ''श्रमिक संघ कांग्रेस का कार्य सुधार नहीं वरन् क्रान्ति'' था।[19]

इस साम्यवादी आन्दोलन को 1922–24 के पेशावर षडयंत्र विवाद से एक अल्पकालिक झटका लगा। इस मामले में अच्छी संख्या में प्रमुख साम्यवादियों (जैसे डांगे, मुजफ्फर अहमद, शौकत उस्मानी, गुलाम हुसैन, नलिनी गुप्त, एस. चेट्टियार, आर. एल. शर्मा व एम. एन. रॉय) पर भारत के सम्राट की सम्प्रभुता को क्रान्ति के द्वारा पलटने के षडयंत्र का आरोप लगाया गया। कुछ दिनों के लिए साम्यवादी गतिविधियाँ धीमी पड़ गयीं, पर 1925 में बहुत तीव्र व उग्र रूप में इसका पुनः अभ्युदय हुआ। इस मुकदमे की परवाह किए बिना, साम्यवादियों ने श्रमिक संघों पर कब्जा जमाने व कामगार वर्ग के नेतृत्व करने में उन्हें एक जनआन्दोलन के रूप में परिवर्तित करने का साहसिक कदम उठाया जिससे वे ''कारखानों के श्रमिकों के नजदीक आए, वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त से निर्देशित हुए तथा उन्होंने राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्रों में एक अकेली शक्ति के रूप में कार्य किया।''[20]

भारत में गाँधी व नेहरू के अलावा अन्य किसी भी प्रकार का वामपंथ विजयी नहीं हो सका क्योंकि उपरोक्त भारतीय राष्ट्रवाद की प्रकृति से मेल खाता था। गाँधी ने अहिंसा व जन आन्दोलन के पथ का रचनात्मक तरीके से निर्वाह किया। उन्होंने दक्षिणपंथी व वामपंथी धड़े के सभी लोगों को कांग्रेस के अधीन काम करने के लिए बहुत लचीला मंच बनाया। जिन्होंने सीमा लांघी, वे ही पराजित हुए। पर नेहरू ने गाँधीवादी राजनीति की सीमा बिना लांघे भारतीय कांग्रेस के चरित्र को बदलने में सफलता प्राप्त की। गाँधीजी ने भारत को समझा, नेहरू ने उसे खोजा। इसी कारण, जबकि साम्यवादी, राय–समर्थक व सभी अति–समाजवादियों ने अपना आधार खो दिया, नेहरू दक्षिणपंथियों व वामपंथियों से संबंध रखने में स्थिर बने रहे और उन्होंने गाँधीवाद के साथ

फैवियनवाद व साम्यवाद का विशिष्ट सम्मिश्रण प्रस्तुत किया। यद्यपि यह बहुत विचित्र प्रतीत होता है, पर यही कांग्रेस की विशिष्ट विशेषता थी।

सन्दर्भ सूचीः–

1. पी.वी. सिन्हा, इंडियन नेशनल लिबरेशन मूवमेंट एंड रसिया (1905–17), स्टर्लिंग, न्यू दिल्ली, 1975, पृ. ix.
2. उपरोक्त.
3. लेनिन, नेशनल लिबरेशन मूवमेंट इन द ईस्ट, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को, 1969, पृ. 12–13.
4. हेनरी कॉटन, न्यू इंडिया, के. पॉल, लंदन, 1904, पृ. 13.
5. वेलेंटाइन चेरॉल, इंडिया–ओल्ड एंड न्यू, मैकमिलन, लंदन, 1921.
6. सत्यव्रत राय चौधरी, लेफ्टिस्ट मूवमेंट इन इंडिया 1917–1947, मिनर्वा पब्लिशर्स, कलकत्ता, 1976, पृ. 25.
7. के.एम. पणिक्कर, एशिया एंड वेस्टर्न डोमिनेन्स, सोमैया पब्लिशर्स, 1999, पृ. 250.
8. टी.आर. सरीन, रसियन रिव्यूलशंस एंड इंडिया, स्टर्लिंग, न्यू दिल्ली, 1978, पृ. 2.
9. उपरोक्त, पृ. 6.
10. एल.पी. सिन्हा, द लेफ्ट विंग पॉलिटिक्स इन इंडिया, न्यू पब्लिशर्स, मुजफ्फरपुर, 1965, पृ. 320.
11. विपिन चन्द्र, नेशनलिज्म एण्ड कोलोनियलिज्म इन मॉडर्न इंडिया, पृ. 214.
12. लेनिन (1969), पूर्वोक्त, पृ. 70–71.
13. जीन. डी. ओवरस्ट्रीट एंड मार्शल विंडमिलर, कम्युनिज्म इन इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बकर्ले, 1959, पृ. 51–52.
14. ई. बोरकेनाऊ, कम्युनिस्ट इंटरनेशनल, यूनिवर्सिटी ऑफ मिशीगन प्रेस, 1962, पृ. 165.
15. देखें एल.पी. सिन्हा, पूर्वोक्त, पृ. 75.
16. उपरोक्त, पृ. 43.
17. लेनिन, कलेक्टेड वर्क्स, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मास्को, 1965, पृ. 140.
18. एम.एन. रॉय, वन ईयर ऑफ नन कोऑपरेशन, कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, कलकत्ता, 1923.
19. एम.एन. राय, पॉलिटिकल लेटर्स, वेनगार्ड बुकशॉप, जुरिक, 1924, पृ. 20.
20. सत्यव्रत राय चौधरी, पूर्वोक्त.